विज्ञान-वार्ता

उपषिनद् शब्द का तात्पर्य्य

उपनिषद् शब्द भारतीयों के लिए अपरिचित नहीं है। ईश, केन, कठ आदि उपनिषदों के नाम भी विद्या-प्रमियों ने सुने हैं। इतने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उपनिषद् कुछ ऐसे ग्रन्थों के नाम हैं जिनमें ब्रह्मविद्या का विवेचन है। ब्रह्मविद्या का ही दूसरा नाम वेदान्त भी है। अत: उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय वेदान्त है - यह बात भी भारतीय साहित्य से थोड़ा-बहुत परिचित पाठक जानते हैं। फिर भी उपनिषद् शब्द का अर्थ गीता के प्रकरण में जानना इसलिए आवश्यक हो जाता है कि स्वयं ''गीता'' शब्द ''उपनिषद्'' का विशेषण है। ''गीता'' शब्द का उपयोग हम आजकल संज्ञा के रूप में कर रहे हैं किन्तु व्याकरण की दृष्टि से गीता का अर्थ है - ''गायी गई''। जब हम ''गायी गई'' कहते हैं तो सहज ही यह प्रश्न उपस्थित होता है ''गायी गई'' क्या वस्तु ? उत्तर है - ''गायी गई उपनिषद्''। प्रश्न होता है कि ''किसके द्वारा गायी गई'' ? तो उत्तर है ''भगवान् के द्वारा गायी गई।'' अत: गीता का पुरा नाम हैं ''भगवान् के द्वारा गायी गई उपनिषद्।'' अथवा भगवद्गीतोपनिषद्। ''भगवत्'' और 'गीता'' शब्द की व्याख्या हम पहले दो लेखों में कर चुके हैं। प्रस्तुत लेख में उपनिषद् शब्द का अभिप्राय स्पष्ट करना है। यह भी पहले ही स्पष्ट कर दें कि ''उपनिषद्'' शब्द संस्कृत भाषा में स्त्रीलिङ्ग है। इसीलिए ''गीता'' भी स्त्रीलिङ्ग है। हिन्दी में ''उपनिषद्'' शब्द का प्रयोग प्राय: पुल्लिंग में भी हो जाता है। अत: ''गायी गई उपनिषद्'' को अशुद्ध नहीं मान लेना चाहिए। संस्कृत भाषा की दृष्टि से ''गाया गया उपनिषद्'' कहना अशुद्ध होगा।

मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्य और उपनिषद्

प्रश्न होता है कि गीता नाम से प्रसिद्ध ग्रन्थ को उपनिषद् क्यों कहा जाता है ? उपनिषद् तो ईश, केन, कठ आदि ग्रन्थों का है जो कि वैदिक साहित्य का अन्तिम भाग माना जाता है। वैदिक साहित्य के चार भाग हैं - मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्य और उपनिषद्। गीता वैदिक साहित्य का भाग नहीं है, फिर इसे उपनिषद् कैसे मान लिया गया ? इस प्रश्न का उत्तर ढूंढने के लिए हमें संस्कृत साहित्य में उपनिषद् शब्द का प्रयोग ढूंढना पड़ेगा।

पहले वैदिक साहित्य को देखें। शतपथ ब्राह्मण कहता है कि इस अग्नि की उपनिषद् वाक् है - **तस्य वा एतस्याग्नेर्वागेवोपनिषद्**। स्पष्ट है कि यहां उपनिषद् का अर्थ कोई ग्रन्थ नहीं है। छान्दोग्योपनिषद् में भी ''उपनिषद्'' शब्द ग्रन्थ के अर्थ में नहीं आया है। वहां कहा गया है कि जो कार्य विद्या, श्रद्धा

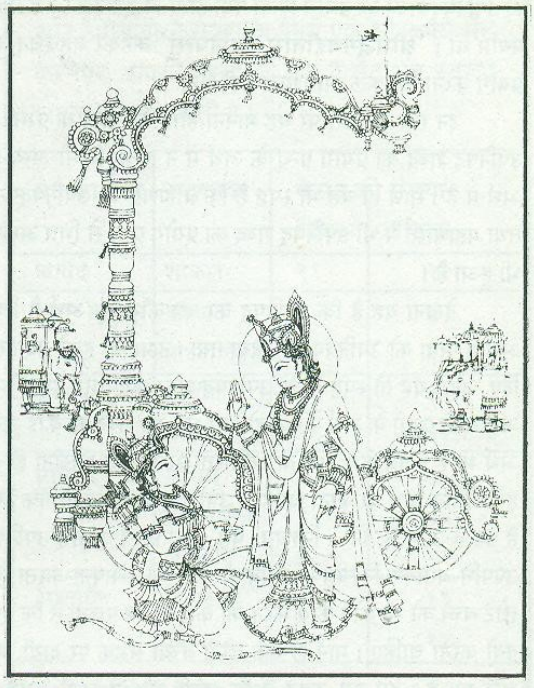

तथा उपनिषद् पूर्वक किया जाता है वह अधिक फलदायी होता है - **स यदेव विद्यया करोति, श्रद्धया, उपनिषदा, तदेव वीर्यवत्तरं भवति**। यहां भी उपनिषद् का कुछ अन्य ही अर्थ होना चाहिए, ग्रन्थ-विशेष नहीं।

महाभारत में उपनिषद् शब्द का पयोग किस रूप में हुआ, यह जानना भी महत्वपूर्ण होगा, क्योंकि गीता महाभारत का ही भाग है। शान्तिपर्व में कहा गया है कि वेद की उपनिषद् सत्य है, सत्य की उपनिषद् दम है, दम की उपनिषद् दान है, दान की उपनिषद् तप है, तप की उपनिषद् त्याग है, त्याग की उपनिषद् सुख है, सुख की उपनिषद् स्वर्ग है तथा स्वर्ग की उपनिषद् शम है -

वेदस्योपनिषत्सत्यं, सत्यस्योपनिषद्दम :।
दमस्योपनिषद्दानं, दानस्योपनिषत्तप: ।
तपसोपनिषत्याग:, त्यागस्योपनिषत्सुखम् ।
सुखस्योपनिषत्स्वर्ग:, स्वर्गस्योपनिषच्छम: ।।

यहां उपनिषद् शब्द आठ बार आया है और एक बार भी उपनिषद् का प्रयोग प्रसिद्ध ईश, केन, कठ आदि ग्रन्थों के अर्थ में नहीं हुआ है।

एक बात और ध्यान देने की है। गीता के प्रत्येक अध्याय के

अन्त में जो पंक्ति आती है वहां उपनिषद् शब्द का प्रयोग बहुवचन में है, एकवचन में नहीं। इतनी बात स्पष्ट है कि गीता एक ग्रन्थ है, अनेक ग्रन्थों का समूह नहीं है। यदि गीता ग्रन्थ को बतलाने के लिए ही उपनिषद् शब्द का प्रयोग किया गया होता तो एकवचन कहना ही पर्याप्त था। **'श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु'** कहकर बहुवचन का प्रयोग करना बिल्कुल आवश्यक नहीं था।

इन सब आधारों पर यह मानना होगा कि गीता के प्रसङ्ग में उपनिषद् शब्द का प्रयोग ग्रन्थ के अर्थ में न होकर किसी अन्य ही अर्थ में है। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि ब्राह्मणग्रन्थ, उपनिषद्ग्रन्थ तथा महाभारत में भी उपनिषद् शब्द का प्रयोग ग्रन्थ से भिन्न अर्थ में भी हुआ है।

देखना यह है कि उपनिषद् का वह कौन-सा अर्थ है जिस अर्थ में गीता को उपनिषद् कह दिया गया। ऊपर जो हमने उदाहरण दिए, उनसे यह तो स्पष्ट है कि उपनिषद् शब्द का प्रयोग ईश, केन, कठ आदि ग्रन्थों के अर्थ में रूढ़ होने पर भी, इस शब्द का कोई अन्य अर्थ भी है। जब रूढ अर्थ के अतिरिक्त अन्य अर्थ खोजना हो तो हमें यौगिक अर्थ पर जाना चाहिए। उपनिषद् शब्द का यौगिक अर्थ है उप = उपपत्ति, नि = निश्चय, षत् = प्रतिष्ठा। अर्थात् उपनिषद् उपपत्ति बताकर निश्चयपूर्वक किसी कर्म की स्थापना करता है। छोटे बच्चे को भी कोई कार्य करने को कहें तो वह पूछता है कि ऐसा क्यों करना चाहिए। मान लें एक छोटा बच्चा सड़क पर दायीं ओर चल रहा है। हम उसे कहते हैं कि बायीं ओर से चलो। बालक तत्काल पूछता है कि ऐसा क्यों ? हम उसे समझाते हैं कि सडक पर सब लागों को अपनी बायी ओर चलने का नियम इसलिए बना है कि एक दिशा में जाने वाले सभीलोग सड़क के एक ओर ही चलेंगे तो भिन्न-भिन्न दिशाओं में जाने वाले वाहन अथवा यात्री परस्पर टकराएंगे नहीं और दुर्घटना नहीं होगी। बायी ओर चलना एक कर्म हुआ; ऐसा करने से दुर्घटना नहीं होगी-यह उस कर्म की उपपत्ति हुई। बालक ने इस उपपत्ति को समझकर बायीं ओर चलने के निश्चय को हृदयङ्गम कर लिया, यह इस कर्म की उपनिषद् हुई। तात्पर्य्यार्थ हुआ किं कर्म की इतिकर्त्तव्यता का ज्ञान कराने वाली उपपत्ति की उपनिषद् है। उपनिषद् को कर्म का रहस्य अथवा मर्म भी कह सकते हैं। उपनिषद् ज्ञान रूप है, किन्तु उपनिषद् केवल ज्ञान नहीं है अपितु कर्म में प्रवृत्त करने वाला ज्ञान है। इसीलिए तो-जैसा हमने ऊपर कहा है-छान्दोग्योपनिषद् यह कहती है कि उपनिषद् पूर्वक किया गया कर्म बलवान् होता है।

उपनिषद् का ऐसा अर्थ अनेक विद्वानों को ठीक नहीं लगेगा क्योंकि उपनिषद् शब्द विशुद्द ज्ञान के अर्थ में प्रसिद्दी पा चुका है, तथापि छान्दोग्योपनिषद् जैसी श्रुति हमें यह अर्थ करने को बाधित करती है। वस्तुस्थिति यह है कि आचार्य्य शङ्कर ने कर्म और ज्ञान के विरोध की बात बहुत बलपूर्वक बतायी है। इस लिये जब उन्होंने गीता का ज्ञानपरक अर्थ किया तो उन्हें यह भी कहना पड़ा कि गीता में कर्म का समर्थन नहीं है। दूसरी ओर लोकमान्य तिलक ने गीता का कर्म परक अर्थ किया तो उन्हें शङ्कराचार्य का खण्डन करना पड़ा। सच में इन दोनों मनीषियों को ऐसा करने की आवश्यकता नहीं थी। श्रुति कहती है कि विज्ञान यज्ञ तथा कर्म की व्याख्या करता है - **विज्ञानं यज्ञं तनुते कर्मापि च**। याजुषी श्रुति तो विद्या और अविद्या के समुच्चय की बात स्पष्ट अक्षरों में ही कह रही है -

विद्याञ्चविद्याञ्ज यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ।।

शतपत ब्राह्मण मृत्यु तथा अमृत और अन्योन्यानु प्रविष्ट बता ही रहा है। यह ठीक है कि ज्ञान का स्वरूप भिन्न है तथा कर्म का स्वरूप भिन्न है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि ये दोनों एक-दूसरे के सहयोगी नहीं बन सकते।

ज्ञान और कर्म परस्पर उपकारक

आज का वैज्ञानिक कर्म द्वारा ज्ञान प्राप्त करता है। वह प्रयोगशाला में एक प्रयोग करता है। और उसके आधार पर एक सिद्धान्त की खोज करता है। प्रयोग कर्म रूप है और सिद्धान्त ज्ञान रूप है। उस सिद्धान्त के आधार पर वह अनेक नवीन तकनीकों की खोजें करता है। यहां ज्ञान कर्म में सहायक हो जाता है। यहां प्रत्यक्ष अनुभव में आ रहा है कि ज्ञान और कर्म परस्पर उपकारक हो रहे हैं।

ज्ञानवादियों का कहना है कि उनका अभिप्राय यह है कि ब्रह्मज्ञान का कर्म से विरोध है। जब जीव को यह ज्ञान हो गया कि वह ब्रह्म है तो फिर भला वह कर्म क्यों करेगा ? आपातत: यह बात ठीक लगती है किन्तु विचार करें कि स्वयं शङ्कराचार्य जैसे ब्रह्मज्ञानी से भी क्या कम छूट गए थे ? बल्कि ३२ वर्ष की अल्पायु में जितना कर्म वे कर गए उतना कर्म तो कोई कर्मवादी भी शायद ही कर पाए। ज्ञानवादी का मत है कि ब्रह्मज्ञानी नित्य नैमित्तिक कर्म तो करता है किन्तु काम्य कर्म नहीं करता। अत: काम्य कर्म का तो ज्ञान से विरोध है ही।

गीता की स्थिति देखें। युद्ध तो काम्य कर्म ही है। फिर श्रीकृष्ण जैसे ज्ञान ने अर्जुन को युद्ध की प्रेरणा क्यों दी। इस प्रश्न के उत्तर में ही गीता की उपनिषद् छिपी है। युद्ध सामान्यत: काम्य कर्म है और बन्धन का कारण भी है किन्तु यदि सुख-दु:ख जय-पराजय, हानि-लाभ, जन्म-मरण जैसे द्वंद्वों से ऊपर उठकर अनासक्त भाव से युद्ध जैसा कर्म भी किया जाए तो वह बन्धन का कारण नहीं रहता-यही गीता का कहना है।

युद्ध तो उपलक्षण है। कोई भी कर्म कामना से किया जाए

तो बन्धन काकारण बन जाएगा। सन्ध्यावन्दन नित्य कर्म है। मान लें कि कोई व्यक्ति सन्ध्या इसलिए करता है कि लोग उसकी प्रशंसा करें कि वह व्यक्ति कितना धार्मिक है तो उसके लिए सन्ध्या जैसा नित्य कर्म भी काम्य कर्म बन जाएगा और बन्दन का कारण भी बन जाएगा। किन्तु एक सिपाही देश-रक्षा के अपने कर्त्तव्य के पालन करने की भावना से निन्दा-प्रशंसा की चिन्ता किए बिना शत्रु से देश को बचाता है तो क्या उस सिपाही के उस कर्म को हम निन्दनीय मानेंगे ? श्रीकृष्ण का कहना है कि निन्दनीय तो यह है कि वह सिपाही पाप से बचने का बहाना भरकर युद्धभूमि से भाग निकले। यदि हम ऐसा करने लगें तब तो समाज की अथवा राष्ट्र की कोई व्यवस्था ही नहीं बन पाएगी। अर्जुन यही करने चला था और श्रीकृष्ण ने उसे ऐसा करने से ही रोका।

दुःख सुख में द्रष्टा ज्ञाता

प्रश्न थोड़ा जटिल है। ब्रह्म ने सृष्टि की रचना की और स्वयं भी उसमें अनु प्रविष्ट हो गया **-तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्।** प्राचीन काल से ही यह प्रश्न उठता रहा है कि परिपूर्ण ब्रह्म को सृष्टि बनाने की क्या आवश्यकता थी। यह प्रश्न तब उत्पन्न होता है जब हम यह मान लेते हैं कि प्रत्येक कर्म किसी न किसी कामना से प्रेरित होकर ही किया जाता है। हमारी यह मान्यता गलत भी नहीं है, किन्तु अधूरी अवश्या है। सामान्यतः कर्म कामना से ही प्रेरित होते हैं, किन्तु कुछ कर्म स्वाभाविक भी होते है। स्वाभाविक कर्मों के कारण नहीं ढूंढा जाता। ब्रह्म ज्ञान-कर्म उभयरूप है। सृजन उसका स्वाभाविक कर्म हैं। इसे ही शास्त्रकार ब्रह्म कि लीला कहते है। लोग आक्षेप लगाते हैं कि ब्रह्म की लीला अद्भुत है कि हम इतने दुःखों में फंस गए हैं। वस्तुतः दुःख में हमें ब्रह्म की लीला ने नहीं फंसाया है अपितु हमारे अज्ञान ने फंसाया है। भगवान् ने तो राम के अवतार के रूप में हमें यह शिक्षा दि कि दुःख में भी मनुष्य कैसे अविचलित रह सकता है। गीता की स्थित प्रज्ञ की स्थिति तो पूरी की पूरी दुःख सुख में द्रष्टा ज्ञाता बने रहकर समभाव रखने की हैं।

ब्रह्म सृष्टि करता है किन्तु स्वयं उसमें लिप्त नहीं होता। फिल जीव ब्रह्म का अंश होकर कर्म से दूर कैसे भाग सकता है ? कर्म तो उसे करने ही होंगे किन्तु कर्म उसे बांधे कैसे नहीं - यही रहस्य अथवा मर्म गीता में बताया गया है। इसी रहस्य को उपनिषद् कहा जाता है।

यह चर्चा व्यर्थ का शब्दजाल नहीं है। कर्म में तो आबाल वृद्ध सभी निरत हैं किन्तु कर्म उनके लिए भारभूत भी बना हुआ है। कर्म से डरकर कुछ लोग सन्यास का सेवन करते हैं किन्तु देखने में यह आता है कि वे भी झंझटों से छूट नहीं पाते। आश्रम मठ, शिष्य-मण्डली और न जाने कौन-कौन सी मुसीबतें संन्यासी को घेर लेती हैं। कहा जा सकता है कि संन्यासी इन झंझटों में फंसता नहीं है। यही होना भी चाहिए। किन्तु गीता कहती है कि गृहस्थ भी तो अपने कर्त्तव्यों की पूर्ति निर्लिप्त रह कर कर सकता है।

निष्कर्ष तो यह है कि गृहस्थ हो अथवा संन्यास, आसक्ति बन्धना का कारण है। गीता वर्णाश्रम व्यवस्था की पक्षधर है। प्रत्येक को अपने-अपने वर्ण तथा आश्रम के धर्म का पालन करना चाहिए। यदि संन्यासी का युद्ध में शस्त्र उठाना गलत है तो अर्जुन के लिये भिक्षा मांगकर पेट भरने के ईच्छा करना भी गलत है। कर्म न संन्यासी से छूटता है, न गृहस्थ से, छोड़ना आसक्ति अथवा कामना को है। यही कर्म करने पर भी बन्धन में न पड़ने का रहस्य अथवा उपनिषद् है। गीता इस रहस्य को उद्घाटित करने के कारण ही उपनिषद् कहलाती है।

- डॉ. दयानन्द भार्गव